बचपन का बोझ कम करने के लिए

बच्चों के तन-मन से शिक्षा का बोझ कम करने की 30 साल पुरानी मांग अब अमल में आती दिख रही है, पर इससे क्रांतिकारी सुधार की उम्मीद व्यर्थ है।

हरिवंश चतुर्वेदी
डायरेक्टर, बिमटेक

स्कूली बच्चों और अभिभावकों के लिए यह अच्छी खबर है। अब पहली से दसवीं कक्षा तक के बच्चों के लिए स्कूली बैग का वजन निर्धारित कर दिया गया है। मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा सभी राज्य सरकारों और केंद्रशासित क्षेत्रों को निर्देश दिए गए हैं कि अब स्कूली बच्चों के बैग का वजन वही होगा, जो कि मंत्रालय ने निर्धारित किया है। अब पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के बैग का वजन 1.5 किलोग्राम से लेकर दसवीं कक्षा के लिए पांच किलोग्राम तक तय किया गया है। साथ ही होमवर्क के लिए भी निर्देश जारी कर दिए गए हैं। पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को होमवर्क देने पर रोक लगा दी गई है। उन्हें कक्षा में सिर्फ मातृभाषा और गणित पढ़ाई जाएगी। तीसरी से पांचवीं कक्षा के बच्चों को भी निर्धारित तीन विषय एनसीईआरटी की किताबों से ही पढ़ाए जाएंगे।

स्कूली बच्चों के कंधों पर लदे बस्ते के बोझ का मामला नया नहीं, तीन दशक पुराना है। 1980 में प्रसिद्ध लेखक आरके नारायण को जब राज्यसभा के लिए मनोनीत किया गया था, तो उन्होंने सदन में अपने एकमात्र भाषण में स्कूली बच्चों पर पढ़ाई और बस्ते के बोझ व स्कूलों में उन्हें रट्टू तोता बनाने की कोशिशों का मुद्दा बड़े जोर से उठाया। इसके बाद मानव संसाधन मंत्रालय ने प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक छह सदस्यीय कमेटी का गठन किया था, जिसे स्कूली शिक्षा में सुधार का एजेंडा निर्धारित करने का काम दिया गया। आरके नारायण ने *मालगुडी डेज* उपन्यास में अल्बर्ट मिशन स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की कहानी के माध्यम से 20वीं सदी के हिन्दुस्तान में स्कूली शिक्षा और अभिभावकों के तौर-तरीकों को स्वामी और उसके दोस्तों की नजरों से दिखाया था, जिन्हें स्कूली शिक्षा के कठोर सांचे में फिट होने के लिए मजबूर किया जाता है।

यशपाल कमेटी ने बच्चों पर बस्ते के बोझ की जांच के दौरान समूची स्कूली शिक्षा पर एक आलोचनात्मक ढंग से नजर डाली थी। कमेटी का कहना था कि बस्ते के बोझ की समस्या के कई विचारणीय पहलू हैं। नर्सरी स्कूलों में अब बच्चों को दो-ढाई साल की आयु में भरती कर दिया जाता है। बच्चों की दिनचर्या एक मशीनी ढांचे में बदल रही है। सुबह बस्ता लटकाकर स्कूल जाना, दोपहर में घर लौटकर होमवर्क करना, फिर ट्यूशन पढ़ना और शाम को घर पर टीवी देखना, क्योंकि खेल-कूद के लिए खुली जगह अब कम हो रही है।

यशपाल कमेटी ने पाया कि बच्चों पर पढ़ाई और इम्तिहान का शारीरिक व मानसिक बोझ इतना बढ़ गया है कि वे पढ़ाई से उबने लगे हैं। कमेटी ने इस उबाऊ, यांत्रिक, आनंद रहित शिक्षा के कारणों और उसे 'सानंद-शिक्षा' बनाने के उपायों पर भी कई रचनात्मक और प्रभावशाली सुझाव दिए थे। यशपाल कमेटी ने पाया था कि स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम को तैयार करने में जिन विशेषज्ञों की सेवाएं ली जाती हैं, वे बच्चों के सीखने के तौर-तरीकों से वाकिफ नहीं होते। अक्सर ये विशेषज्ञ बच्चों को ज्यादा से ज्यादा सूचनाएं देना चाहते हैं। वे सूचनाओं को ही ज्ञान समझते हैं। यशपाल कमेटी ने दिल्ली या बड़े शहरों में विशेषज्ञों द्वारा बैठकर बनाए पाठ्यक्रमों की भी आलोचना की, जिसको बनाने में देश के दूर-दराज के इलाकों के गुणी शिक्षकों की कोई राय नहीं ली जाती है। कमेटी ने समाज में, खासतौर पर शहरों में शिक्षा को लेकर पैदा हो रही एक भ्रांत धारणा पर भी चिंता प्रकट की। उसका कहना था कि अभिभावकों का यह सोचना कि उनके बच्चे हर परीक्षा में टॉप करें और आगे जाकर डॉक्टर-इंजीनियर बनें, एक अंधी दौड़ को जन्म दे रहा है। कमेटी ने देश के स्कूलों में समुचित आधारभूत सुविधाओं और अच्छे शिक्षकों की कमी पर भी गंभीर चिंता व्यक्त की थी।

मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों को स्कूली बस्तों के वजन को निर्धारित करने का निर्देश एक सही कदम है, हालांकि इस कदम को उठाने में 25 वर्ष लगे। इस बीच न जाने कितने करोड़ बच्चे और किशोर, बस्तों के बोझ और आनंद रहित स्कूली शिक्षा से त्रस्त होते रहे और रट्टू तोते बनते रहे। बच्चों से उनका बचपन, उनकी मौज-मस्ती, उत्सुकता, कौतूहल और मासूमियत छीन लीजिए, तो वे इंसान नहीं, रोबोट बन जाते हैं। लेकिन स्कूली बच्चों और उनके बचपन की चिंता करते समय ध्यान सिर्फ बच्चों के स्कूली बस्ते के वजन तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। यशपाल कमेटी की जिन प्रमुख सिफारिशों को लेकर 25 वर्ष पूर्व एक राष्ट्रीय सहमति बनी थी, वे थीं- स्कूली बच्चों के पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तक निर्माण में शिक्षकों की भागीदारी, प्री-नर्सरी में प्रवेश की न्यूनतम आयु सीमा का निर्धारण, प्री-नर्सरी में प्रवेश के लिए बच्चों के इंटरव्यू को खत्म करना, प्री-नर्सरी में पाठ्य पुस्तकों के प्रयोग पर पाबंदी, प्राइमरी स्कूलों में होमवर्क व प्रोजेक्ट वर्क पर पाबंदी, प्राइमरी स्कूलों में शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात 1:40 रखना और इन स्कूलों में दृश्य-श्रव्य उपकरणों का उपयोग। लेकिन कमेटी की ज्यादातर सिफारिशें ठंडे बस्ते में पड़ी रहीं, क्योंकि सरकारों के लिए स्कूली शिक्षा का मात्रात्मक विस्तार ही एजेंडा रहा है। स्कूली शिक्षा के नतीजों और उसकी क्वालिटी पर ध्यान नहीं दिया गया है। गांवों, कस्बों और छोटे शहरों में गरीब परिवार भी प्राइवेट स्कूलों में दाखिले के लिए सरकारी स्कूलों की मुफ्त पढ़ाई को छोड़ना पसंद कर रहे हैं। ज्यादातर स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं और कुशल शिक्षकों का अभाव है। एक अनुमान के अनुसार, देश में अभी 90 लाख स्कूली शिक्षकों की कमी है। इसमें आईटी तकनीक भी बड़ी भूमिका निभा सकती है। यह तय है कि पारंपरिक तौर-तरीके अब नहीं चलेंगे। उनकी जगह बेहतर योजनाओं और आईटी के उपयोग से इनोवेटिव तरीके अपनाने होंगे। स्कूली बच्चों के बस्ते का बोझ कम करना एक सराहनीय कदम होगा, किंतु इससे किसी क्रांतिकारी सुधार की उम्मीद मत करिए।

15 जुलाई, 1993 को अपनी रिपोर्ट पेश करते समय प्रोफेसर यशपाल ने कहा था, 'स्कूली बच्चों के लिए ज्यादा खतरनाक बोझ है पढ़ाई को ठीक से न समझ पाना। जो प्राइमरी स्कूलों से पढ़ाई छोड़ देते हैं, उनमें ज्यादातर वे बच्चे हैं, जो रट्टू तोते बनने को तैयार नहीं हैं। वे उन बच्चों से बेहतर हैं, जो सिर्फ रट्टा मार परीक्षा पास कर जाते हैं।' इस कथन को आज भी याद रखना जरूरी है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)